अध्याय - पाँच

धर्म के क्षेत्र में मूल्य विघटन

धर्म के क्षेत्र में मूल्य विघटन

मानव मूल्यों में धर्म की उत्कृष्टता अतीत कालों से मानी गयी है । मनुष्य और पशु में जो अन्तर है, उन में धर्म की गणना भी है । "धर्म का निवास मनुष्य के मन में है, यह स्वयं मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है । बाकी प्रत्येक वस्तु विलीन हो जा सकती है, परन्तु ईश्वर में विश्वास, जो संसार के सब धर्मों की चरम स्वीकृति है, शेष रह जाता है । धर्म चाहे कितने ही रूप क्यों न बदल ले, परन्तु वह तब तक बना रहेगा, जब तक कि मनुष्य, जो कुछ वह है - अर्थात् शक्ति और दुर्बलता का सम्मिश्रण - बना रहेगा ।"[1]

संसार भर में अनेक धर्म हैं । इन में कुछ ऐसे हैं जिन केलिए कोई लिखित धर्म ग्रन्थ, पवित्र नियम या प्रार्थनायें तक नहीं हैं, जो हर पीढी द्वारा आगली पीढी को सौंपी जाती हैं । दूसरे प्रकार के धर्म ऐतिहासिक हैं । "ऐतिहासिक धर्म केवल नाम या आठ ही रह जाते हैं ।

---

1. धर्म - तुलनात्मक दृष्टि में डॉ. राधाकृष्णन, पृ.14

सेमिटिक जातियों के तीन धर्म हैं, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म । हिन्दुओं का - जिस की बौद्ध, जैन और सिख धर्म आदि अनेक शाखायें हैं और ज़रथुस्त्रवाद का विकास आर्यजातियों ने किया । इनके साथ यदि कनफ्यूशियस और लाओत्से के धर्मों को मिला लिया जाय, तो बस ये ही मानव-जाति के जीवित धर्म हैं[2] ।"

धर्म की आवश्यकता

मानव शरीर, मन और आत्मा से बना है । इन में से प्रत्येक को अपने लिये समुचित पोषक तत्व अनिवार्य है । भोजन और व्यायाम द्वारा शरीर तन्दुरुस्त रहता है, विज्ञान और शिक्षा द्वारा मन पोषित होता है और आत्मा धर्म, कला, दर्शन आदियों के द्वारा प्रबुद्ध रहती है । इन में से किसी एक पक्ष के विकास में रुकावट पडने पर जीवन उतना असंतुलित होता है । अक्सर आजकल ऐसा होता है कि शरीर की तुष्टि केलिए भोजन किया जाता है और मन की पुष्टि केलिए शिक्षा दी जाती है । आत्मा का पक्ष शुष्क होता है, क्योंकि धर्म सम्बन्धी कोई जानकारी अधिकांश युवकों को नहीं मिलती है । आत्मा-हीन मनुष्यों से, किये जानेवाले अमानुषिक बर्तावों से चारों ओर विषैला हो गया है "आधुनिक संसार की एकता केलिए कोई नया सांस्कृतिक आधार होना चाहिए, वास्तविक प्रश्न यह है कि वह आर्थिक और व्यवहारवादी मस्तिष्क द्वारा, जो कि इस समय अधिक प्रभुतापूर्ण है, प्रेरित होना चाहिए अथवा आध्यात्मिक मन द्वारा । एक ऐसा यान्त्रिक जगत्, जिस में मानवता, आत्मा शून्य कार्य कुशलता के यन्त्रजात के रूप में ढाल दी गई हो, मानवीय प्रयत्न का उचित लक्ष्य नहीं है । हमें एक ऐसे

---

2. धर्म - तुलनात्मक दृष्टि में, डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 32

आध्यात्मिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिस के अन्दर न केवल अर्थ शास्त्र और राजनीति का विशाल आवेशपूर्ण जीवन हो, अपितु आत्मा की सुदृढ आवश्यकताओं केलिए भी स्थान हो[3]।" इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण से "वसुधैवकुटुम्बकम्" के पुनर्निर्माण के कार्य में धर्म द्वारा पूरा किए जानेवाला भाग, विज्ञान के भाग की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

धर्म की शिक्षा कुछ धर्मों में दी जाती है । हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, पारसी, ईसाई, बौद्ध आदि असंख्य धर्मावलंबियों का जमघट है भारत । खेद की बात यह है कि सभी धर्मों में आदर्शवान धर्म शिक्षकों की कमी है । इस के कारणों पर प्रकाश डालने से यह पता चलता है कि आजकल धर्म-प्रवर्तन एक नौकरी बन गई है । वास्तव में धर्म तो एक जीवन-शैली है । भक्तों को सही पथप्रदर्शन करने केलिए बाह्य धार्मिक अगुओं - पुजारी, पादरी, मुल्ला, पांडे, गुरु साहिब को मन, वचन व कर्म से पवित्र और आदर्शवान रहना चाहिए । लेकिन धार्मिक क्षेत्र में पनपनेवाली विद्रूपतायें और विसंगतियाँ इस बात की गवाही है कि ये अगुए ही सब से बडे ढोंगी निकलते हैं ।

आध्यात्मिकता और ईश्वर में विश्वास भारतीय संस्कृति का मूलाधार रहा है । मनुष्य जीवन का प्रत्येक कार्य-कलाप ईश्वर पूजा से शुरू करते आये हैं । लेकिन स्वतंत्रता के बाद हमने ईश्वर और धर्म का तिरस्कार किया । "धर्मनिरपेक्षता" का अर्थ हम समझ नहीं पाये । हम यह सत्य भूल जाते हैं कि सभी धर्मों का आधार एक ही ईश्वर पर केंद्रित है । कोई भी धर्म ऐसा उपदेश नहीं देता है कि तुम दूसरे धर्मों की निन्दा करो या अपने धर्म को ही सब से श्रेष्ठ समझो । शुकदेव प्रसाद ने धर्म की

3· धर्म - तुलनात्मक दृष्टि में डॉ· राधाकृष्णन, पृ·38

रूबी यों व्यक्त की है - "प्राचीन काल की सभी सभ्यताएँ धर्म में विश्वास रखती थीं । हिन्दू, इस्लाम, यहूदी, ईसाई सभी धर्मों में ईश्वर की कल्पना की गई है । कमोवेश सभी धर्मों में ईश्वर को विश्व का निर्माता माना गया । काल-प्रवाह के साथ धर्म हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनने लगे और धार्मिक ग्रन्थ आस्थाओं के आधार । यहाँ तक कि सामाजिक रीतियाँ और नैतिक नियम तक धर्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित होने लगे । धर्म के मूल सिद्धान्त ही स्मृति के आधार बने । परन्तु कालान्तर में ये धर्म रूढियाँ बन गए । एक समय ऐसा भी था जबकि धर्म-ग्रन्थों के खिलाफ कोई बात नहीं सुनी जा सकती थी[4] सभी धर्मावलम्बी एक ही ईश्वर की प्रार्थना करते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि "फिर धर्म के नाम झगडा क्यों" ? उत्तर यह है कि हम ने अपने धर्म की जानकारी प्राप्त नहीं की है, दूसरे की भी । तब हमें अपने धर्म के नेताओं की कथनी का आश्रय लेना पडता है । वह नेता धर्मान्ध होगा तो झगडा ज़रूर । इसलिए विविध धर्मों के महान सन्देशों का समन्वय करना भी परमावश्यक है । धर्म की कीमत से वर्तमान पीढी वंचित रह गई है । किसी दुकान से धर्म को खरीदना असंभव है । डॉ॰ राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है - "हम में से अधिकांश लोग धर्म को ऐसे आसानी से संभाल लेना चाहते हैं, जैसे हम समुद्र के किनारे पडी सीपी को उठा लेते हैं । हम में अध्यवसायपूर्वक खोज करने का धीरज या शक्ति नहीं है । जैसे हम पुस्तकों की दुकान से पुस्तकें लेते हैं, मुर्गीपालन वाले से अंडे लेते हैं या दवाई बेचनेवाले से दवाइयाँ लेते हैं, उसी प्रकार हम उपदेशक या पुरोहित से आशा करते हैं कि उससे हमें कुछ रुपये या प्रति सप्ताह एक घंटा देकर धर्म प्राप्त हो जाए । लेकिन धार्मिक होने केलिए तो बहुत काफी मूल्य चुकाना होता है[5] ।" ठीक है बुद्ध को राज्य, सुख, संपत्ति

4· विज्ञान और मानव मूल्य शुकदेव प्रसाद - आजकल, पृ·28 नवम्बर 1982

5· धर्म तुलनात्मक दृष्टि में - डॉ॰ राधाकृष्णन, पृ·76

आदि त्यागना पडा धार्मिक बनने केलिए । सत्य, प्रेम आदि धर्म के सिद्धान्तों की प्राप्ति केलिए हमें भी परिश्रम करना पडेगा धर्मी बनने केलिए ।

धर्मनिरपेक्षता और भारत का संविधान –

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है । यहाँ "अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता है । लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा[6]।" भारत में अब भी धर्मनिरपेक्षता की स्थापना में कहीं कहीं गडबडियाँ होती हैं । इस बीसवीं सदी के अंतिम चरण में भी जबकि ज्ञान, विज्ञान और प्राद्योगिकी अपनी चरम सीमा को छू चुकी है, व्यक्ति की महत्ता को आंकने की कसौटी कुछ लोगों केलिए जाति या वर्णव्यवस्था है । दरअसल भारतीय कलेबर का एक कलंक है छुआछूत । मनुष्य मनुष्य को जाति के नाम पर उच्च या नीच समझना मनुष्यत्वहीनता है । ब्राह्मण और शूद्र दोनों में आकार में, या विकार में कोई अन्तर नहीं है । हाथ में चोट लगनेपर दोनों के शरीर से रक्त ही बहते हैं । शूद्र होने के कारण उस के शरीर से पानी नहीं निकलता है । बुद्धि में या शक्ति में भी अन्तर नहीं है । शूद्र के शिशु होने पर उस के चार पैर नहीं होते हैं । मानव की सृष्टि परमेश्वर ने की । तब केवल दो ही जाति थी - पुरुष और स्त्री । प्रपंचोत्पत्ति से आज तक मनुष्य-सृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । जाति-विचार फिर कैसे आया ? मनुष्य ने ही मनुष्य को गुलाम रखा । शक्ति जिन में थी, उसने शक्तिहीन को

6· भारत का संविधान भाग 3, 25,1, पृ·8

अपना गुलाम बनाया । भारत में इस जाति-चिन्ता की जडें सदियों की गहराई तक पहुँची हुई हैं । यहाँ विदेशी शासकों ने आक्रमण किया कई बार । उसके भी पहले जाति-विचार कायम था । मुसलमानों ने या ब्रिटीशों ने इसे यहाँ किसी नियम के द्वारा कायम नहीं रखा था । फिर उन विदेशियों ने अपनी शासन नीति सुरक्षित रखने की सोच की ।

अस्पृश्यता

आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, सवर्ण-अवर्ण शहरीली-जंगली, गोरा-काला, आदि अनेक नामों से इस छुआछूत की भावना से भारतीय साहित्य के पाठक परिचित हैं । सडक से चलने, मन्दिर जाकर पूजा करने, पाठशाला में प्रवेश पाने, यहाँ तक कि शूद्र युवतियाँ छाती पर कपडा पहनने तक में कडी नियंत्रण निर्धारित थे । शूद्र को भैंस के जैसे बिकने और उस पर कोडा चलाने का अधिकार उसके सवर्ण मालिक रखते थे ।

इस "जाति-पिशाच" से अपने को बचाने में निम्न जातिवालों को ही परिश्रम करना चाहिए । ऐसे परिश्रम के अभाव ने उन को ऐसा तिरस्कृत ही बनाया । ब्राह्मणों की गुलामी और मुसलमानों की या ब्रिटीशों की गुलामी में शूद्र ने अन्तर नहीं समझा । इसलिए ही 1947 तक भारत गुलामी में जकडी रही । अस्पृश्यता निवारण के बारे में गान्धीजी ने बहुत अधिक भाषण दिये और लिखे भी थे । गान्धीजी के विचार में - "अस्पृश्यता रूपी पाप, दण्ड या विषैले साप को हिन्दुत्व से नाश न करें तो एक दिन वह उस का संहारक होगा । हिन्दू धर्म से अस्पृश्यों को बहिष्कृत करने की अपेक्षा उन्हें अपने धर्म के सदस्य समझ कर

आदर और सम्मान करना चाहिए[7]।"

छुआछूत और अस्पृश्यता की समस्या वर्तमान समाज का अत्यन्त पेचीदार प्रश्न है जो हिन्दू समाज में सदियों से धर्म के नाम पर व्याप्त एक अनिवार्य अंग बन गयी है। समाज की जडों को हिला देने वाली इस समस्या के बारे में गान्धीजी का कथन कितना सच है - "अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं, बल्कि उसमें घुसी हुई सडाध है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, उस का परम कर्तव्य है। यदि यह अस्पृश्यता समय रहते नष्ट न की गई तो हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज का अस्तित्व ही संकट में पड जाएगा[8]।"

हरिकृष्ण प्रेमी ने छुआछूत की भावना को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय एकता में बाधक माना है। उन की इस राय की अभिव्यक्ति "सांपों की सृष्टि" की बेगम महरू के शब्दों में झलकती है - "जब तक हिन्दुस्तानी विभाजित रहेंगे, एक दूसरे के दुख दर्द में शामिल नहीं होंगे, जब तक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नहीं खा सकेंगे - जब तक इन के यहाँ आठ घरों केलिए नौ चूल्हों की ज़रूरत रहेंगी, तब तक अलाउद्दीन के अत्याचारों को कौन रोक सकता है? जो भारतीय विदेशियों से लडते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छुआछूत पर ही अधिक ध्यान रखते हैं उन का उद्धार कैसे हो सकता है।"[9]

---

7. "Untouchability is a sin, a grievous crime, and will eat up Hinduism, if latter does not kill the snake in time. Untouchable should no longer be the outcastes of Hinduism. They should be regarded as honoured members of Hindu society and should belong to the varna for which their occupation fits them." The Problem of Untouchability in India : Mahatma Gandhi, p.141.

8. गान्धी विचार दोहन, पृ.41 (गान्धी विचार धारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव - डॉ.अरविन्द घोष, पृ.77 से उद्धृत, प्र.सं.1973)

9. सांपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.30, प्र.सं.1959

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में किसी धर्मावलम्बी को बलात् दूसरे धर्म में शामिल करने की ज़रूरत नहीं है । धर्म प्रचार केलिए बलात्कार बेवकूफी है । हरिकृष्ण प्रेमी ने धर्म के नाम पीडा देने का उदाहरण दिया है । अपने पिता अलाउद्दीन ने दक्षिण के आक्रमण के समय अनेक निरीह ग्रामीणों की हत्या करायी थीं जिन की सूचना खिज़रखाँ देवल को देता है "हिन्दू मुसलमान, काला-गोरा, छोटा-बडा, ऊँच-नीच, ये सारे भेद हमारी दृष्टि के दोष से उत्पन्न हुए हैं । मैं ने अब्बाजान की आज्ञा पाकर युद्धों में अनेक बार भाग लिया है, निरीह ग्रामों को, जिन का राजाओं के युद्धों से कुछ भी संबंध न था, खाक में मिलते हुए देखा है । उस समय मैं नहीं समझ पाया कि जिन ग्रामों को हम जलाकर राख का ढेरा बना रहे हैं उन में भी हमारी ही तरह इंसान बसते हैं । हमारी उनसे कोई सहानुभूति न थी - क्योंकि वह हमारे धर्म को माननेवाले नहीं थे ।"[10] "खिज़रखाँ" के मन में दूसरे धर्मावलंबियों से मनुष्य के रूप में बर्ताव करने की आवश्यकता का स्वर गूँज उठता है । इस परिवर्तित विचार को "भीष्मसाहनी" ने "कबिरा खडा बजार में" दर्शाया है । कबीर कायस्थ के से बोलते समय यों कहता है - "सुनिये साहिब, मैं हूँ तो नीच जात का अनपढ जुलाहा, पर एक बात तो मैं भी समझता हूँ । जब किसी की नज़र में एक ब्राह्मण है और दूसरा तुर्क, तब तक वह इन्सान को इन्सान नहीं समझेगा । मैं इन्सान को इन्सान के नाते गले लगाने केलिए मन्दिर के सारे पूजा-पाठ और विधि अनुष्ठान छोडता हूँ और मज़िद के रोज़ा नमाज़ भी छोडता हूँ । मैं इन्सान को इन्सान के रूप में देखना चाहता हूँ ।[11]

---

10. साँपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.108, तृ.सं.1966
11. कबिरा खडा बज़ार में भीष्मसाहनी, पृ.8।

मुगल सम्राट औरंगज़ेब और पुत्री मेहरुन्निसा के वार्तालाप के बीच में पिता के सामने शासन-सम्बन्धी कार्यों में जाति या धर्म को मिलाने के विरुद्ध वह कहती है - "सम्राट को चाहिए कि वह किसी भी धर्म से अपना सम्बन्ध न रखे। वह यह न करे कि मज़िदें बनवाये और मन्दिरों को तुड़वाये। उच्च पदो पर धर्म के आधार पर नहीं योग्यता के आधार पर नियुक्तियाँ करे। सभी धर्मों के अनुयायियों पर समान कर लगाये जायँ और समान सुविधायें उन्हें दी जायें। जहाँ पनाह, सम्राट केलिए प्रजा के सब लोग उस की सन्तान है। एक सन्तान से प्यार और दूसरी से घृणा करने का परिणाम साम्राज्य रूपी परिवार के सर्वनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता।[12] अक्सर युवा पीढी परम्परागत धर्म के सिद्धान्तों का तिरस्कार करनेवाले होते हैं। बुद्धिवाद की कसौटी पर कसने से कई सिद्धान्त खरा नहीं उतरते हैं। जाति के नाम पर नारी को सीमारेखा खींचना युवक बेमूल समझते हैं। "अलग-अलग रास्ते" में पूरन युवा पीढी का प्रतिनिधि है जो अपने पूर्वजों के विचारों का खण्डन करता है। पूरन की बहन रानी पति के घर से लौट आयी है। पिता के विचार में ब्राह्मण स्त्री रानी को पति के घर लौट जाना ही चाहिए, वहाँ की मुसीबतों अत्याचारों को सहकर दम-घुटने पर भी पति के विरुद्ध कुछ सोचे बिना रहना चाहिए। धर्म के अनुसार शूद्र नारी का पुनर्विवाह समाज सम्मत है, पर ब्राह्मण नारी पुनर्विवाह नहीं कर पाती। अपनी बहन के पक्ष में पूरन पिता के विचारों का खण्डन करते हुए कहता है "जहाँ तक मनुष्यता का सम्बन्ध है ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई अन्तर नहीं, और फिर ब्राह्मण की लड़की का दिल चाण्डाल की लड़की से बडा नहीं होता और न वह पत्थर ही का।[13]" "कबिरा खडा बाज़ार में" का कबीर और मित्र मिल कर जाति-भेद मिटाने के लक्ष्य से सड़क पर

---

12. आज का मान हरिकृष्ण प्रे मी, पृ.8। चं.सं.2022 विक्रम
13. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.111

सत्संग और भण्डारा लगाते हैं । कोतवाल को कायस्थ यों समझाता है इस से धर्म की मर्यादायें टूटेंगी, जात-पाँत के नियम टूटेंगे । हमने सुना है यह बीमारी काशी में ही नहीं फूटी है, देश के और स्थानों में भी फूट रही है, कुम्मी - कमीने इकट्ठा हो रहे हैं ।"[14] कबीर और मित्र पुलिस का मार खाकर भी जाति-पाँत के विरुद्ध के काम में लगे रहते थे ।

भारत विशाल, धनसंपन्न, कला कौशल पूर्ण देश है । सदियों से भारत के गुलाम रहने के कारणों पर विचारते समय यह मानना पडता है कि हम ने भारत के लोगों को अपना भाई समझना नहीं सीखा है । विभिन्न संस्कृतियों ने हम पर शासन किया, भारत से छोटे देश भी भारत पर आक्रमण करके हमें गुलाम बना रहे थे । एक मात्र कारण भाई चारे का अभाव है । हरिकृष्ण प्रेमी ने "उद्धार" के सुजानसिंह के द्वारा हमारी जाति-व्यवस्था पर चोट करायी है - "संसार में भारत जैसा महान, धन धान्यपूर्ण कला कौशल निपुण दूसरा देश कौन सा है, फिर भी शताब्दियों से इस देश पर विदेशियों को आक्रमण करने का साहस हो रहा है, इतने बडे राष्ट्र को अनेक बार पराजय और स्वाधीनता का अभिशाप सहना पडता है सो कब किस पाप से, इसलिए कि हम भाई को भी भाई नहीं समझते हैं । हम जातियों में विभाजित हैं । एक दूसरे से घृणा करते हैं । शत्रु संख्या में भी कम होकर हम पर विजय पाता है क्योंकि बहुसंख्या में होकर भी एक रस नहीं, एक अनुशासन में नहीं ।"[15]

वर्ण-व्यवस्था और वर्ग विभाजन भारतीय समाज का अभिशाप है । अपनी निम्न वंशीयता के कारण, स्वतंत्रता के 43 वर्ष के बाद भी, बहुतों को घृणा और तिरस्कार ही मिलते हैं । जीवन के

---

14. कबिरा खडा बज़ार में भीष्मसाहनी, पृ.84

15. उद्धार - हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.89-90, चं.सं.1956

अच्छे अच्छे अवसरों से वंचित निम्नवर्गीय के सामने सवर्ण वर्ग उच्चस्तरीय हो जाते हैं । ऐसी हालत में अवर्णों के मन में विद्रोह की भावना फूटना स्वाभाविक है । अवैध सन्तान समाज में उपेक्षित है । अपना अवैध रहने में, उस का कोई दोष नहीं है । एक निर्दोष को अपने जीवन में सामाजिक अपमान सहना पडता है, लोक लाज से माता के बचने के साथ ही साथ ऐसी सन्तानों को माता पिता के प्रेम, ममता से वंचित रहना भी पडता है । भावतीचरण वर्मा ने "मेरे नाटक" में एक जारज पुत्र का, अपमान-सहन व्यक्त किया है । "कर्ण" को, सूत-पुत्र कहकर अपमानित होना पडता है ।

द्रौपदी के स्वयंवर में सभी राजा उपस्थित थे । स्वयंवर की शर्त - जो लक्ष्य बेध करे उसके साथ द्रौपदी शादी करेगी - सुनकर कर्ण के मन में द्रौपदी के प्रति प्रेमभाव पैदा हुआ । लक्ष्यवेध केलिए निकले कर्ण को द्रौपदी ने "सूतपुत्र" कहकर अपमानित किया -
"कर्ण ! रुको, तुम सूत पुत्र क्या कर्ण हो ? मुझको वरने का अधिकार तुम्हें नहीं, राज सुता मैं कृष्णा हूँ, यह जान लो । वर्णहीन तुम केवल दर्शक-मात्र रहो ।"[16] कर्ण के मन में चोट लगी, प्रतिहिंसा की भावना से वह ओतप्रोत हुआ । माता-पिता के प्रेम से वंचित, समाज में अकेलापन महसूस किये कर्ण को सुयोधन ने सेनापतित्व दिया तो कर्ण उस पर अधिक प्रभावित हुआ और अर्जुन-वध केलिए प्रतिज्ञाबद्ध भी ।

कर्ण के मन में अपनी माता के प्रति बिलकुल श्रद्धा नहीं है, क्योंकि उसने दो गलतियाँ की, एक अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न पुत्र कर्ण को, लोक लाज से बचकर राजसी सुख भोगने के उद्देश्य से गुप्त में छोड दिया, दो, भरी सभा में जाति के नाम पर कर्ण की अवहेलना करने पर माता ने

---

16. मेरे नाटक भावतीचरण वर्मा, पृ.187

सत्य नहीं कहा । इसलिए माता के प्रति घृणा उसके मन में बढ़ती है - "माता ! पावन ममता की संज्ञा परम प्रार्थी हूँ तुम व्यंग्य न यों उसका करो, मैं हूँ एक कलंक मात्र जो त्याज्य है उसे पुत्र कहकर संबोधित मत करो ।"[17]

भगवतीचरणवर्मा ने नाटक में यह व्यक्त किया है कि धर्म के प्रतिनिधि कृष्ण भी युद्ध में शूद्र कर्ण के विरुद्ध है । धर्मात्मा कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने बाण चलाकर कर्ण को मार गिराया ।

जाति के नाम पर शिक्षा-दी जानेवाली एक सभ्यता भारत में कायम थी । चाहे अक्षरज्ञान हो, या अस्त्र-विद्या के अधिकारी ब्राह्मण और क्षत्रिय थे । शूद्र पाठशाला के आंगन तक पादस्पर्श न कर पाता था । शंकरशेष ने "एक और द्रोणाचार्य" के द्वारा इस सत्य का परामर्श किया है । गुरु द्रोणा और अर्जुन ने जंगल में भौंकते कुत्तों के मुँह को अस्त्रों से बन्द करने की एकलव्य की धनुर्विद्या देखी । एकलव्य ने इस बीच अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं ने द्रोणाचार्य की मूर्ति को गुरु बनाकर अस्त्र विद्या सीखी है । दस वर्ष पहले एकलव्य को अनार्य जानकर द्रोणाचार्य ने पढाने की प्रार्थना तिरस्कृत की थी भी । लेकिन जब एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रूप में द्रोणाचार्य ने उस के दाहिने हाथ का अंगूठा मांगा तब दुखी एकलव्य ने द्रोणाचार्य से कहा - "अंगूठा देने के बाद मैं क्या रह जाऊँगा ? आप आशीर्वाद दे रहे हैं या शाप ?"[18] एकलव्य ने द्रोणाचार्य को अपना अंगूठा दिया । अनार्य के अंगूठे कटवाने से द्रोणाचार्य ने उस की सीखी आयुध कला का अपहरण ही किया है । इस घृणित काम के पीछे शूद्र की प्रगति और सम्मान रोकने का गूढ-तंत्र छिपा रहता है ।

---

17. मेरे नाटक : भगवतीचरण वर्मा, पृ.192
18. एक और द्रोणाचार्य शंकरशेष, पृ.52

शिक्षा द्वारा शिष्यों की आँखों में ज्योति देने केलिए निश्चित गुरु, यहाँ जाति के नाम पर शूद्र एकलव्य का अंगुठा कटवाता है ।

नीच कुल की युवतियों के साथ उन्नत वंशज युवकों का यौन-सम्बन्ध स्थापित होना, फिर युवति और अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न शिशु को छोड देना आदि निन्दय कार्य समाज में चले आ रहे हैं । जाति की चिन्ता युवतियों के साथ जोडना, बाद में जाति के नाम पर गर्व करना यह तो निर्लज्जता का काम है । संरक्षक में ऐसा प्रसंग मिलता है । अवैध पुत्र के बडे होने पर अपनी माता को छल किये पुरुष पिता से वह कहता है - आदर का ऊँचा सिंहासन झाबुआ नरेश अर्थात् मेरे पिताजी ने एक दिन मेरी माता के रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे आदर के ऊँचे सिंहासन पर बैठाना चाहा था । और ऐसा आदर किया कि आज उस की बेटी स्वयं महाराज की पुत्री - एक दासी पुत्र से अधिक कुछ नहीं । स्वयं तुम्हारे पिताजी ने एक दासी को आदर के ऊँचे सिंहासन पर बैठाया था । किन्तु वह आदर उस के पुत्र तुम्हारे पुत्र से उत्पन्न पुत्र, तुम्हारे भाई गोवर्धन को राजपूत समाज में ऊँचा न उठा सका ।"[19]

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक "कोणार्क" में कोणार्क मन्दिर का प्रधान शिल्पी विशु ने अपनी प्रेमिका सारिका को अपने द्वारा हामिला बनते जानकर इसलिए छोड दिया कि वह शबरी जाति की थी ।"[20] यौन-सम्बन्ध केलिए, नैमित्तिक सुख पाने केलिए छल करने केलिए जाति एक प्रतिबन्ध नहीं हुआ था विशु को । पर भविष्य में शबरी का पति कहला जाना उस केलिए अपमान जनक उसने जाना । विशु की कायरता का

---

19. संरक्षक प्रेमी, पृ.17
20. कोणार्क माथुर

तिक्त फल भविष्य में उस के अवैध पुत्र धर्मपद को ही भोगना पडा ।

जाति के नाम पर शासक को बनाना और बिगाडना घोर अन्याय है । लेकिन अक्सर ऐसा देखा जाता है । भारत के सम्बन्ध में, शासक वर्ग आर्य ही रहना चाहिए ऐसा एक हठ किसी किसी के विचार में है । जगदीश चन्द्र माथुर ने पहला राजा के माध्यम से इस निन्द्य कार्य पर प्रकाश डाला है । ब्रह्मावर्त के राजा अंग के पुत्र वेन ने एक अनार्य कन्या के साथ सम्बन्ध रखा । पिता और पुत्र में इस विषय पर अनबन बना और राजा अंग निर्गत चला गया । मुनियों ने फिर वेन को राजा बनाया । वेन की मृत्यु के बाद ब्रह्मावर्त के शासक के रूप में वेन की अवैध सन्तान कवष को मानने से मुनिगण इनकार करते हैं । रक्त की शुद्धता की दुहाई देनेवाले मुनि लोग अनार्य को शासक बनाना नहीं चाहते हैं । वे आर्य पृथु को पहला राजा बनाते हैं । राजा बनने के बाद पृथु ने अपने को साथ दिये तीनों मुनियों को मन्त्रिमण्डल के सदस्य बनाये । पुरोहित मन्त्री के रूप में शुक्राचार्य, ज्योतिष मंत्री के रूप में गर्ग और अत्रिमुनि अमात्य के रूप में बन जाते हैं । ऐश्वर्य संपन्न धरती के शासक के रूप में पृथु विराजते हैं । इस बीच देश भर में अकाल, भूकम्प फैलते हैं ।

राजा जनता से संपर्क करने लगे तो शुक्राचार्य ने उसे अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहा । जनता से राजा को अलग रखने केलिए आचार्य ने समझाया कि ब्रह्मावर्त में अकाल पडने का एकमात्र कारण, वहाँ के अनार्य और उनके नेता कवष हैं । भूवण्डिका की पूजा में वे फिर लगे रहे । इस बीच उर्वी से उन की भेंट हो जाती है । परिश्रम के द्वारा पैदावार बढाने का उपदेश सुनकर कवष के नेतृत्व में वह शुरू होता है । कवष के उपदेशानुसार पृथु ने बाँध-निर्माण शुरू किया । शुक्राचार्य और मुनि लोग बाँध के निर्माण में गुप्तरूप से बाधाएँ डालते हैं ।

इस कारण बाँध के पूर्ण होने से पहले ही बडी बाढ आती है और उसमें कवष और सखी उर्वी बह जाते हैं । शुक्राचार्य ने यह समझा कि यदि बांध समाप्त होगा तो अपना पद नष्ट होगा कवष और उर्वी को मन्त्रिमंडल में स्थान मिलेगा । अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए जनता की भलाई में वह बाधा डालता है । पृथु चारों तरफ से मुनियों के षड्यंत्र से घेरा था । पृथु अनार्यों को मित्र बनाना चाहता था, पर आर्यों और मुनियों के जाल से बाहर न निकल सकता है ।

स्वतंत्र भारत की राजनैतिक घटनाओं से मिलती जुलती घटनायें नाटक में दिखायी गयी है । अनार्य होने के कारण तिरस्कृत कवष समाज विरोधी बने बिना समाज हितैषी बनता है । अनार्य होने के कारण काली त्वचावाले उस ने मेहनत करके, नहर खोद कर पानी निकालने की सहायता की है । "कवष की काली चमडी के नीचे एक शुभधारा ही बहती है[21]।" इस नाटक में, आर्य-अनार्य भेद भाव भूल कर परिश्रम करने पर भारत की वर्तमान गरीबी, भूखमरी आदि खत्म होने की चेतावनी दी गई है । लेकिन जाति-पाँति के वक्ता मुनिगण और पुरोहितगण इस में कहाँ तक साथ देंगे, इस पर भविष्य ही उत्तर देनेवाला है ।

जाति-भेद-प्रथा से भारत में हुई अवनतियों पर प्रकाश डालते हुए "सांपों की सृष्टि" में गुजरात नरेश की पत्नी कमलावती अपनी पुत्री देवल से जो कहती है, वर्तमान भारत की हालत में भी विचारणीय है । वर्ण-भेद भारत केलिए अभिशाप है । ब्राह्मण लोग

---

21. पहला राजा जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.27

शूद्र जनता का तिरस्कार करते हैं। उन में योग्यता होते हुए भी मानेंगे नहीं। अलाउद्दीन के द्वारा पकडी गई कमलावती दिल्ली महल में रहती है। मुसलमानों से हिन्दुओं को बहुत कुछ सीखने को है, जिस के बारे में कमलावती कहती है - "मैं ने देखा कि इनके पास बहुत कुछ ऐसा है जिसे हमें ग्रहण करना चाहिए। हमारा गुजरात का ही एक शूद्रदास अपनी योग्यता और गुणों से आज सुलतान का प्रमुख सेनापति और वजीर बन बैठा है। क्या कोई हिन्दू राजा किसी शूद्र को इतना अवा उठा सकता था ? हमने ऐसे संकुचित दायरे बना रखे हैं कि उनके बाहर योग्य-से योग्य व्यक्ति भी नहीं निकल सकता। प्रतिभाएं बंद सीमाओं में मुरझा जाती है। इस तरह राष्ट्र की शक्ति का विनाश होता है[22]" कई विदेशी भारत के शासक बने, सदियों से। शायद इस का मूल कारण यही होगा कि जातीयता के कारण निम्न वर्ग प्रगति में अवरुद्ध पाकर निराश थे। उन्नत वर्गों से सोलहों आने शासित वे विदेशियों को रोकने को तैयार नहीं हुए। क्योंकि भारत का या बाहर का दोनों उन के लिए बराबर होंगे। इसलिए अपनी सडी गली हालत मे शायद विमोचन की चाह करते हुए निम्न वर्गों ने विदेशियों के विरुद्ध कदम उठाया न होगा। सुलतान के द्वारा सेनापति बनाया गया शूद्र काफूर, ब्राह्मण राजा की पत्नी कमलावती से घृणा पूर्ण स्वरों पर कहता है - "मैं इस दुर्भाग्य को कभी नहीं भूल सकता कि मैं ने भारत की शूद्र जाति में जन्म लिया है, जिस के स्पर्श से उच्चता और पवित्रता के अभिमानियों की पवित्रता नष्ट होती है। जिन भारतीयों से काफूर ने सदा तिरस्कार ही प्राप्त किया है उनके प्रति किसी प्रकार की ममता उनके हृदय में तो हो ही कैसे सकती है[23] ?"

---

22. सांपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.2। (तृ.सं.1966)
23. वही, पृ.38

भारत की धार्मिक हालत सदियों से समान रूप से चलती आ रही है । करीब छः सौ साल के पूर्व कबीर के ज़माने में जो धर्मान्धता, अनाचार, आदि प्रचलित थे, वे सब वर्तमान भारत में भी मौजूद हैं । हिन्दू और मुसलमान के बीच जो कलह था, हिन्दू और हिन्दू के बीच जो असमानताएँ थीं, वे वर्तमान समाज में भी उपलब्ध हैं । हिन्दुओं के बीच में ब्राह्मण और शूद्र में जो भेदभाव था, अब भी मौजूद है । भीष्मसाहनी ने "कबिरा खड़ा बजार में" कायस्थ और कोतवाल के वर्तालाप से यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं में अनेक विभाग हैं । काशी निवासी कायस्थ, कोतवाल के सन्देह-निवारण करता हुआ कहता है - "धर्म के तो सब हिन्दू ही हैं साहिब, पर हिन्दू धर्म के अन्दर भी बहुत से धर्म-सम्प्रदाय हैं । अब आपको कैसे समझायें[24] ।" कुरुक्षेत्र के महन्त के काशी आगमन के समय सड़कों पर किये जाने वाले साज-सजावट के साथ साथ सड़क पर हवा में चाबुक चलाते हुए एक साधु के चलन को कायस्थ इस पर परामर्श देता है - "यह नीच जात के लोगों को रास्ते पर से हटाने केलिए, मालिक । झाँकी पर किसी कमीन का साया नहीं पड़ना चाहिए[25] ।" महन्त के आगे आगे दो सेवक झाड़ू से सड़क बुहारते आगे बढ़ते हैं । एक साधु चाँदी के पात्र से सड़क के दायें - बायें बीच में छिड़काव करता जाता है । छः साधुओं के कन्धे पर रखी चाँदी की पालकी पर महन्त बैठा हुआ है । इस के बाद महन्त के पैर धोने का दृश्य दिखाया गया है । चरणों को धोने पर, नीचे गिरनेवाला जल, अनेक स्त्रियाँ-पुरुष अंजुली में ले-लेकर पीते हैं[26] ।" ऊपर हमने देख लिया शूद्र मनुष्य के चले मार्ग को झाड़ू करके, गंगा-जल छिड़के साफ किया जाता है और ब्राह्मण का पैर धोकर भक्त-जन पिया करते हैं । शूद्रा को देखना या छूना वा उसके चले मार्ग से चलना तक निषिद्ध है ।

24· कबिरा खड़ा बजार में भीष्मसाहनी, पृ·29

25· वही, पृ·32

26· वही, पृ·33

इस समाज में कबीर एक ऐसा मनुष्य है जो ब्राह्मण विधवा के पेट में जन्म लेकर जुलाहे के परिवार में पाला जाता है । लेकिन लोगों को कबीर की जाति मालूम नहीं है । इसलिए तुर्क समझ कर ब्राह्मण लोग कबीर को मारते हैं । नीमा के मुँह से कबीर की माता को जाति खुल जाती है तो कबीर यों कहता है - "कोई हिन्दू पूछेगा तो कहूँगा नीमा मुसलमानिन का बेटा हूँ ..... । इस से हिन्दू भी कोडे नहीं मारेंगे और तुर्क भी कोडे नहीं मारेंगे"[27] सूत पुत्र होने के कारण स्वयंवर सभा में तिरस्कृत कर्ण,[28] निषाद सुत होने के कारण आचार्य द्रोण के अन्याय के शिकार बना एकलव्य[29] शूद्र जाति में जन्म लेने से ब्राह्मण गुजरात नरेश से तिरस्कृत और बाद में अलाउद्दीन द्वारा सेनापति के रूप में पुरस्कृत काफूर,[30] शिल्पी विश्वके द्वारा शबरी स्त्री में उत्पन्न, पर उपेक्षित धर्मपद[31] अनार्य होने के कारण मुनिगणों से राजपद प्राप्ति से वंचित "कवष"[32], ब्राह्मणी[33] का उपेक्षित पर जुलाहा का पाला पोसा कबीर ये सब स्वतंत्र भारत की उपेक्षित जनता के प्रतिनिधि हैं जिन की हर सुविधा जाति के नाम पर ठुकरायी जाती है ।

सुविधा भोगी वरेण्य वर्ग निम्न जातियों को पनपने का अवसर तक नहीं देता है । ऐसे वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में शंकर शेष ने अपने नाटक में द्रोणाचार्य को दिखाया है । द्रोणाचार्य अपनी धनुर्विद्या ब्राह्मण और क्षत्रियों को मात्र सिखाना चाहता है क्योंकि द्रोणाचार्य के मन में यह डर था - "धनुर्विद्या पर उन का अधिकार हो जाएगा,

---

27. कबिरा खडा बज़ार में भीष्म साहनी, पृ.26
28. मेरे नाटक भगवतीचरण वर्मा, पृ.187
29. एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ.52
30. साँपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.38
31. कोणार्क - माथुर,
32. पहला राजा माथुर
33. कबिरा खडा बजार में भीष्मसाहनी

शक्तिशाली होने के बाद ये क्षत्रियों से स्पर्धा करेंगे और परिणाम होगा वर्णाश्रम धर्म पर संकट।"[34] उदयशंकर भट्ट ने भी अपने नाटक "गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण"[35] में इस महान आचार्य की कापुरुषता की भर्त्सना की है।

शंकर शेष ने "बाढ का पानी चन्दन के द्वीप" में स्पष्ट किया है कि जातिवाद हमारे देश का सब से बडा आन्तरिक दुश्मन है जिस मे देश की प्रगति में रुकावट आयी है। अपने कर्म के अनुसार लोगों को विभिन्न जाति-श्रेणियों में बाँटी यह अन्धी व्यवस्था पुराने जमाने से जड पकड कर आज तक आते आते पल्लवित महावृक्ष हो गयी है। व्यक्ति की गणना जहाँ उस की प्रतिभा के अनुसार करनी चाहिए थी, वहाँ उस की गणना जाति के नाम पर की जाती है। उन्नत कुल-जात व श्रेष्ठ जातिवाले, निम्न श्रेणी के लोगों को घृणा पूर्ण नयनों से देखते हैं। "छीतू" जन्म से चमार, पर कर्म से बडा है। वर्तमान समाज में पली दिमागों की अस्पृश्यता को नाटककार ने "ठाकुर" के माध्यम से व्यक्त किया है - "पण्डित, भगवान क्या ब्राह्मण केलिए अलग, ठाकुर केलिए अलग और अछूत केलिए अलग पानी बरसता है? सब पानी एक है। फरक केवल हमारे दिमाग में है।"[36] उस जगह में बसति के कारण जो बाढ आयी है यह सब मकानों में पहुँच गयी। बाढ के कारण लोग जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग भेद भूल कर बचने केलिए दौडे। वहाँ इस बाढ ने नये मनुष्य को जन्म दिया। वे सब जाति-भेद भूल कर एक ही जगह रहने और एक ही बर्तन से खाने लगे। प्रकृति ने वहाँ के जाति-वैर को भुला दिया। मन्दिर के द्वार लोगों केलिए खोल दिये गये। पँडित के

---

34. एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ.54
35. गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण उदयशंकर भट्ट, पृ.80
36. बाढ का पानी चन्दन के द्वीप डॉ.शंकर शेष, पृ.43

घर में अस्पताल बना, बरकत के घर में सूचनालय । इस प्रकार मन्दिर, घर, सब जगह ऐक्यता का झंडा फहराया जाता है । इस बाढने गाँव वालों के मन के हज़ारों वर्ष पुराने जाति-पाँत को धो डाला । बाढ से उन की संपत्ति नष्ट हुई, पर मन पवित्र हुआ । उनमें फिर भी किसी किसी के मन में थोडा मालिन्य रहता है । "बटेशर" के मन से अस्पृश्यता की बाढ को दूर करने केलिए "नवल" का उपदेश यों है "इस बाढ से बचने का एक ही उपाय है कि जिस प्रकार इस टीले पर मृत्यु के भय के कारण धीरे धीरे हम एक हो गये, उसी तरह हम सुख में, समृद्धि में, संघर्ष में भी एक रहें । यह टीला चन्दन का द्वीप बने । इस का सन्देश सारे जीवन की नई सुगन्ध बने ।"[37]

हमारे संविधान के अनुसार, "अस्पृश्यता" का अन्त किया जाता है और उस का किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है । अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा ।"[38] लेकिन राजनैतिक नेता अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए जनता में वर्ग-भेद रखना चाहते है । क्योंकि विभिन्न जाति के नाम पर नेता रहना वे चाहते हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अस्पृश्यता-समस्या पर विचार किया है । "अब गरीबी हटाओ" में हरिजनों को पानी भरने केलिए अलग कुए रखने का परामर्श मिलता है । अपनी झोंपडी के निकट पानीवाला कुआ है । पर वह ब्राह्मणों का है । हरिजन औरत को उस कुए से पानी भरने का अधिकार नहीं है । उसे पास के गाँव से पानी लाना पडता है । चुनाव के समय राजा के आगमन के वक्त ग्रामीण हरिजनों की अभ्यर्थना मानकर

---

37. बाढ का पानी चन्दन के द्वीप डॉ.शंकर शेष, पृ.62

38. "Untouchability" is abolished and its practice in any form is forbidden. The enforcement of any disability arising out of 'untouchability' shall be an offence punishable in accordance with law."
The Constitution of India Part III, 17, p.6

कुए खोदने का आदेश दिया जाता है - "मंत्री, इसके गाँव में एक कुआँ खोदवा दो । यह हमें अच्छी लगती है ।"[39] इस प्रसंग से तीन समस्यायें हमारे सामने आती हैं, 1, उस गाँव में छुआ छूत, पानी भरने में भी है, 2, उस गाँव के सभी हरिजनों के वोट का मूल्य एक कुआँ है, 3, राजा को यह हरिजन औरत अच्छी लगती है । इसी नाटक में हम देखते है कि हरिजन औरत के साथ पुलिस, सरकारी कर्मचारी और अंत में राजा लैंगिक-क्रिया में लगते हैं । याने एक ओर, जाति के नाम पर हरिजन औरत को ब्राह्मण के कुए से पानी भरने नहीं देता दूसरी ओर हरिजन औरत के साथ यौन-क्रिया निषिद्ध नहीं है ।

उच्च वर्ग कभी भी यह नहीं चाहते कि निम्नवर्ग हरिजन आदि अपने समकक्ष बने । वे उन्हें हर प्रकार से दबाये रखकर उन पर अपना आधिपत्य स्थिर रखना चाहते हैं । इसलिए ही सरपंच गाँव में हरिजनों केलिए कुआँ खोदने नहीं देता है । सरपंच कहता है - "उनकी जमीन नहीं है गाँव में । कहाँ खोदेगी ? फिर कुआँ खुदवा देगी तो साले सिर पर चढने लगेंगे । बराबरी की हवस लग जाएगी ।"[40] वास्तव में स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ ही साथ प्रजातंत्रोदय एवं धर्मनिरपेक्षता से भारत में ब्राह्मण-हरिजन, अमीर गरीब समस्या खत्म हो गयी है । लेकिन कुछ लोग उसे बनाये रखने में ही अपनी कुशलता मानते हैं । यहाँ धरती, पानी, हवा सब पर सब का समान अधिकार चाहिए था । गान्धीजी ने ठीक ही कहा है - "समाजवाद एक सुन्दर शब्द है । जहाँ तक मैं जानता हूँ, समाजवाद में समाज के सारे सदस्य बराबर होते है, न कोई नीचा और न कोई ऊँचा । किसी आदमी के शरीर में सिर इसलिए ऊँचा नहीं है कि

---

39. अब गरीबी हटाओ सक्सेना, पृ.34

40. वही, पृ.26

वह सब से ऊपर है और पाँव के तलुवे इसलिए नीचे नहीं है कि वे ज़मीन को छूते हैं । जिस तरह मनुष्य के शरीर के सारे अंग बराबर हैं, उसी तरह समाज रूपी शरीर के सारे अंग भी बराबर हैं । यही समाजवाद है ।"[41] लेकिन दौर्भाग्य की बात है कि गान्धी जी का स्वप्न अधूरा ही रह जाता है । अस्पृश्यता, जातिभेद, ऊँच-नीच के भाव, आदि भारत की प्रगति में अवरोध डाले हुए हैं । "स्वतंत्रता के मिलते ही यहाँ हिन्दू-मुसलमानों में मारकाट, लूट खसोट, हत्या, अपहरण बलात्कार आदि देश-व्यापी हो गये जिस के परिणाम स्वरूप समस्त देश में क्रूरता-द्वेष-बर्बरता का नग्न नृत्य होने लगा जिस से यह प्रतीत होने लगा कि इन्सान मर गया । जीवन-पर्यन्त साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले महामानव गान्धी की हत्या इसी साम्प्रदायिकता के कारण जनवरी 30, 1948 ई० को कर दी गई ।"[42] दर असल हरिकृष्ण प्रेमी का "बापा रावल" इसी साम्प्रदायिकता को कोसता है - "मैं ने ऐसे समाज में जन्म पाया जो मनुष्य और मनुष्य में अन्तर मानता है ।"[43] "आन का मान" में जाति-पाँति की संकीर्ण भावना पर कुठाराघात करते हुए "प्रेमी" ने "दारा" से कहलवाया है - "मनुष्य मात्र को मैं अपने जिगर का टुकड़ा समझूँगा, जाति-धर्म की सीमाओं को लाँघ कर हमें केवल मनुष्य बनना है । इसी आदर्श के लिए जीऊँगा और इसी के लिए मरूँगा ।"[44] जाहिर है समाज में मौजूद जातियों की सीमायें कृत्रिम है जो मनुष्य को दुर्बल बनाती है, मनुष्यता को टुकड़ा टुकड़ा कर देती है ।

---

41. साबरमती का संत यशपाल जैन, पृ०97
42. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - विचार तत्व अवधेशचन्द्र गुप्त, पृ०164
43. प्रकाश स्तंभ हरिकृष्ण प्रेमी, पृ०108
44. आन का मान प्रेमी, पृ०66

मुँह में राम, बगल में छुरी

आज कल भक्ति या धार्मिकता धन और नाम कमाने का एक उपकरण बन गया है । स्वतंत्र-भारत में धार्मिक ढोंगीपन चारों ओर दर्शनीय है । आम जनता की अज्ञता का लाभ उठाने केलिए राजनैतिक नेता और धर्म के नेताओं की गलबाही हो रही है । उनके बारे में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने, शर्माजी और बेनीमाधव के वार्तालाप से इस जलते सत्य की ओर इशारा किया है कि धर्म के नेताओं के वेष में चलनेवाले भेड़िये मेमने के चमड़े पहने हुए हैं । शर्माजी यों कहता है - "सुन्दर भोजन, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर स्त्री पर, धन, कीर्ति, यश, दुनिया इन सब चीज़ों पर समाज के मुखिया कहते बहुत हैं ... करते कुछ नहीं, या सड़क पर जिसे पाप समझते हैं, कमरे में उसी की उपासना करते हैं । अपने भीतर एक बार देखो तो मालूम होगा । हम जिस सफाई के साथ अपने पुण्य का विज्ञापन देते हैं, और इसी सफाई के साथ, अपने पाप का विज्ञापन देते, मुझे पूरा विश्वास है, हम लोगों की नैतिक दशा आज की स्थिति से कहीं अच्छी होती ।"[45] धर्म के अगुआ लोग अपने भाषण से समाज में प्रभाव डालते तो हैं, पर अपने कर्म से अक्सर दुष्ट निकलते हैं । कथनी और करनी में बहुत अन्तर रहते हैं ।

पुराने ज़माने से ही धर्म को समाज में प्रमुख स्थान है । इस कारण धार्मिक पुरोहितों और पादरियों का समूह में आदरणीय स्थान है । अपने अनुयायियों से समर्थन मिलने के कारण इन में बहुत अधिक घमण्ड करते हैं । इसलिए वे पुरोहित समाज के निम्न स्तर के लोगों की उपेक्षा करते हैं और धनवान का पक्षधर बनते भी है । धनवान, अत्याचारी

45. मुक्ति का रहस्य लक्ष्मीनारायणमिश्र, पृ०6।

होने पर भी धर्म के द्वारा पोषित होना स्वाभाविक है । अवधेश चन्द्रगुप्त ने सत्य ही कहा है - "धर्म के ठेकेदारों द्वारा मनुष्य का शोषण कर धनसंग्रह करना तथा ऐसे संग्रहीत धन का कुछ प्रतिशत मन्दिर और धर्म-शाला निर्माण आदि धार्मिक कार्यों पर व्यय करना तथा शेष धन का भोग विलास के रूप में उपयोग करना आदि पूंजीवादी प्रवृत्ति और धर्म के व्यापार-व्यभिचार का यथार्थ चित्रण प्रसादजी ने अपनी नाट्य कृति में किया है क्योंकि धर्म की आड में व्यभिचार और व्यापार करना सब से बडा सामाजिक पाप है ।"[46] धर्म के नाम पर एक और आदर पानेवाले और दूसरी ओर अन्याय करते फिरनेवाले धर्म के अगुओं से दूर रहने केलिए बेबिल में ऐसा परामर्श मिलता है - "···· शास्त्रियों से चौकस रहो, जो लम्बे वस्त्र पहने हुए फिरना, और बाजार में नमस्कार, और आराधनालयों में मुख्य मुख्य आसन और जेवनारों में मुख्य-मुख्य स्थान भी चाहते हैं । वे विधवाओं के घरों को खा जाते हैं, और दिखलाने केलिए बडी देर तक प्रार्थना करते रहते हैं, ये अधिक दण्ड पाएंगे ।"[47]

भीष्म साहनी ने "हानूश" में पादरी द्वारा घडी निर्माण केलिए हानूश को वज़ीफा देने की बात व्यक्त की है । दस साल तक वे आर्थिक सहायता करते रहे । घडी निर्माण पूर्ण न हो जाने के कारण पादरी ने वजीफा बन्द कर दिया क्योंकि अपना धन व्यर्थ खर्च करना वे नहीं चाहते थे । आगे भी वज़ीफा मिलने के विचार से पादरी के पास गये हानूश को पादरी "शैतान" बुलाता हुआ कहता है - "घडी बनाना इन्सान का काम नहीं, शैतान का काम है । घडी बनाने की कोशिश करना ही खुदा की तौहीन करना है । भगवान ने सूरज बनाया है, चाँद बनाया है, अगर उन्हें घडी बनाना मंजूर होता तो क्या वह घडी

46· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - विचार तत्व अवधेश चन्द्र गुप्त, पृ·162

47· मरकुस 12 38-40 {धर्मशास्त्र - नया नियम, पृ·68}

नहीं बना सकते थे ?[48]।" यहाँ हम देखते हैं कि ईसाई पादरी हानूश को "शैतान" पुकारता है जो धर्मशास्त्र के ही विरुद्ध है। यीशु के उपदेशों में ऐसा सिखाया गया है - "जो कोई अपने भाई पर क्रोध करेगा, वह कचहरी में दण्ड के योग्य होगा और जो कोई अपने भाई को "निकम्मा" कहेगा वह महासभा में दण्ड के योग्य होगा, और जो कोई "अरे मूर्ख", वह नरक की आग के दण्ड के योग्य होगा।"[49] धर्म प्रचारक के वेष में हानूश के देश में रहे पादरी जिस परमेश्वर के नाम नाम के प्रतिनिधि है, उन्हीं के ही उपदेशों का तिरस्कार करते हुए, मनुष्य का तिरस्कार करते हुए, भाई का तिरस्कार करते हुए देशवासियों के और शास्त्र के आदर पाते रहते हैं।

भीष्म साहनी ने धर्म के नाम पर शोषण के मुँह में पडी स्त्री का नग्न चित्रण "माधवी" में दिखाया है। महाराजा ययाति की दान प्रियता ने अपनी पुत्री "माधवी" को अनेक युवकों के साथ धर्म के नाम पर व्यभिचार कराया। मुनिकुमार गालव से गुरु दक्षिणा के रूप में आठ सौ अश्वमेधी घोडे गुरु विश्वामित्र ने माँगे। गालव दानी राजा ययाति के पास अपनी बात कही तो ययाती ने उसे अपनी पुत्री "माधवी" को दिया। गालव और माधवी अयोध्या नरेश हर्यश्च के पास पहुँचे। वहाँ माधवी एक वर्ष रह कर हर्यश्च केलिए एक पुत्र को जन्म दिया। दो सौ घोडे वहाँ से मिले। फिर गालव और माधवी काशी नरेश दिवोदास के पास और बाद में

---

48. हानूश भीष्म साहनी, पृ.42

49. "... Any one who is angry with his brother will be subject to judgment. Again, any one who says to his brother, 'Raca', is answerable to the sanhedrin. But any one who says 'you fool' will be in danger of the fire of hell."
Holy Bible, p.1090.

ाज उशीनर के पास पहुँचे । एक एक वर्ष दोनों राजाओं के साथ र माधवी से एक-एक पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार चार सौ घोडे मले । फिर माधवी गालव को ऋणमुक्त कराने केलिए विश्वामित्र श्रम में एक वर्ष रहती है । तीन राजाओं से छ: सौ घोडे पाने माधवी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया और चौथे के आश्रम में ही । शिथिल माधवी को गालव स्वीकार करता भी नहीं । हम देखते हैं कि पिता का यश फैल गया, गालव ऋणमुक्त हुआ, राजाओं ने एक-एक चक्रवर्ती पुत्र पाये ।

अयोध्या के राजा माधवी के लक्षणों की जाँच करता है । र्ती राजा को जन्म देने की माधवी की क्षमता राजसभा में अंकित है - "जिस युवति की पीठ सीधी हो, कपोल तथा नेत्रों के ऊँचे हो, स्तनयुगल तथा नितम्ब ऊपर को उठे हो, कमर पतली केश, दन्त, हाथ, पैर की अँगुलियों कोमल हो, कण्ठस्वर गंभीर हो, गहरी हो, स्वभाव स्थिर और तालू, जीभ तथा होंठ लाल हो, चक्रवर्ती राजा को जन्म देने की क्षमता होगी ।" माधवी के शरीर रनेवाले मनुष्यत्वहीन अन्यायों के सहती हुई वह गालव से पूछती है क्या हो रहा है गालव ? तुम मुझे कहाँ ले आये हो ? मेरे साथ जन्म का वैर चुकाने आये हो ? मैं ने कौन-सा ऐसा पाप किया जिस का यह फल मुझे मिल रहा है ?" [50] "माधवी" में अपने धर्म से रत पिता का, पुत्र को अकेले छोड़के एक स्त्री को एक-एक वर्ष साथ व्यभिचार करनेवाले तीन राजाओं का, गुरुदक्षिणा चुकाने केलिए , युवति के साथ ाले मुनिकुमार का अन्यायपूर्ण हृदयहीन व्यवहार नाटककार ने व्यक्त है । इनराजा, महाराजा, मुनि, गुरु के देश में धर्म कैसे पनपेगा ?

माधवी भीष्मसाहनी, पृ.32

इतना होते हुए भी साधारण जनता के मन में धर्म के प्रति एक प्रकार की रुचि रहती है । जनता की अन्ध भक्ति का लाभ उठाकर विलासमय जीवन बितानेवाले तथा सारे नैतिक मूल्यों को पैरों तले रौंदनेवाले जालिम और फरेबी धार्मिक नेता आज धर्मक्षेत्र में इकट्ठे हुए हैं ।

धर्म के नाम पर धर्मान्धता करना अज्ञता के द्वारा होता है । महाप्रभु के नाम पर देवदासी के रूप में युवतियों के समर्पित करने की प्रथा कई अनैतिक कार्यों केलिए कारण बनते हैं । एक और ऐसी युवतियों के प्रति अभिभावकों द्वारा अन्याय होता है तो दूसरी और मंदिरों के कई युवकों द्वारा कामो त्तेजित होकर व्यभिचार केलिए प्रोत्साहित करना है । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "तिन्दुवुलम" द्वारा इस की पुष्टि की है । नाटक का देवव्रत एक धर्मान्ध पिता है जिस ने अपनी बेटी पद्मावती को देवदासी के रूप में दीक्षित किया है । देवदासी के रूप में अपनी पुत्री को सौंपने के बारे में पिता का विचार ऐसा है - "मैं ने केवल महाप्रभु की सेवा की है, संगीत और स्वरों को मैं ने मनुष्य को नहीं सुनाया है, मैं ने अपना सब कुछ उन्हीं एक महाप्रभु को अर्पित कर दिया है । मेरे पास कुछ नहीं है । यह पद्मावती भी मेरी नहीं है, महाप्रभु की दासी है । मैं स्वयं अपना नहीं हूं, केवल प्रभु का हूं ।"[51]

मेमने के वेश में भेड़िये -

धर्म के नेता के रूप में विराजनेवाला है आचार्य सत्यदर्शन । अपने मन्दिर में नृत्य करनेवाली देवदासियों के साथ गुप्तरूप में यौन-सम्पर्क करनेवाले के रूप में सत्य दर्शन दर्शाया गया है । देवदासी राधा के साथ सत्य दर्शन के अवैध सम्बन्ध से जनित पुत्री है विपुला जिसे भी देवदासी बनायी गयी है । सत्यदर्शन अन्धा हो जाता है तो पश्चाताप के साथ उस का कथन इसका प्रमाण है - "महाप्रभु के

---

51. तिन्दुवुलम लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.23

मन्दिर में रहने पर भी मैं देवता के अस्तित्व को नहीं समझ पाया[52]।"

धर्म की नींव ईश्वर पर केन्द्रित रहना परमावश्यक है। लेकिन अक्सर ऐसा देखा जाता है कि ईश्वर के नाम पर निकलनेवाले कपट भक्त मंदिरों में अपनी राय चलाने लगते हैं। ईश्वर मनुष्य की भलाई करनेवाले होते हैं। लेकिन भक्त के ढोंगी हो जाने पर समाज केलिए हानिकारिक निकलना स्वाभाविक है। इसलिए ही सत्यदर्शन मार्ग के भक्तों के ऊपर से रथ चक्र आगे बढाने की अनुमति देता है और अपने दुश्मनों की मृत्यु की चाह करता है "वह क्यों लहरों में डूब नहीं जाता[53]।" धर्म के प्रवर्त्तकों को दुश्मनी सोचना या करना नहीं चाहिए। पर यहाँ हम देखते हैं कि आँखों की ज्योति नष्ट होने से पहले ही सत्यदर्शन की आत्मा का दीप बुझ गया था।

गेरुए वस्त्र पहनना, गले में रुद्राक्ष-माला डालना, दाढी बढाना आदि दूसरों से आदर पाने केलिए काफी हैं। भोले-भाले भक्त लोग इनके बहकाव में बहुत जल्दी आते हैं। पाप नाशक और शान्ति-दाता के नाम पर घरों में पधारनेवाले स्वामी महेश्वरानन्द का चित्रण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने किया है। रहने को महल, सैर को कार वाला स्वामी गरीबों से हवन केलिए चन्दा वसूल करता है। सत्यव्रत स्वामी के विलासमय जीवन और यज्ञ-हवन की आलोचना करते हुए कहता है "मेरा मन धन के दुरुपयोग से चिन्तित है। जितने का आप घी और अन्न जला दंगे, उतने में स्कूल और अस्पताल खुल सकते हैं[54]।" ग्रामीणों की अन्धभक्ति का लाभ उठाकर विलासमय जीवन बितानेवाले कपट वेषी भक्त आज सर्वत्र दर्शनीय हैं।

52· तिन्दुवुलम लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ·92

53· वही, पृ·30

54 लडाई सर्वेश्वदयाल सक्सेना, पृ·56

धार्मिक पुरोधा भक्तों को अपने जाल में फंसाता है । उन भक्तों के मस्तिष्क को धो डालने में वे सफल निकलते भी हैं । भीष्मसाहिनी ने "माधवी" नाटक में राजज्योतिषियों द्वारा "माधवी" की अपूर्व सिद्धियों के बारे में प्रवचन उदाहरण के रूप में बताया है - "माधवी के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले बालक चक्रवर्ती राजा बनेगी, साथ ही माधवी एक अनुष्ठान के द्वारा चिर कौमार्य भी प्राप्त कर सकती है ।"[55]

लडकियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध बौद्ध मठों में भिक्षुणी के रूप में माता-पिता की इच्छा के अनुसार भेज देने की कई घटनायें होती हैं । जब वे लडकियाँ युवतियाँ बनती हैं तब उनके मन में दूसरी युवतियों की जैसी कामनायें उदित होना और शादी करने केलिए परिश्रम करना या घुट घुट कर अपने यौवन को कोसती हुई या किसी पुरुष के पीछे मठों से भाग जाने की घटनायें अक्सर हुआ करती हैं । लक्ष्मीनारायणलाल ने "दर्पन" के द्वारा ऐसी घटनायें सूचित की है । "पूर्वी" अपनी बहिन के बारे में, आत्मकथा को दूसरा रूप देकर कहती है "जब वह तीन साल की थी, तभी हमारे परिवार के गुरु ने उस की जन्म पत्री बनायी गुरु महाराज ने बताया लड्की घर परिवार में रखने योग्य नहीं है । इसे बौद्धमठ में दे दिया जाना चाहिए, नहीं तो इस से पूरे परिवार का अमंगल होगा । इस प्रकार वह दर्पन पाँच वर्ष की अवस्था में बौद्ध मठ में दान कर दी गई ।"[56] किसी रेल यात्रा के बीच मिले युवक हरिपदम के साथ युवति बुद्धभिक्षुणी दर्पन, वेष और नाम बदल कर शादी केलिए तैयार होकर आयी है शादी निश्चय का समाचार हरिपदम के पिताजी अखबार से ही समझते हैं । इस पर पिताजी कहते हैं -"एक अनजान लड्की रेल की यात्रा में मिल गई । ज़रा-सी प्रेम की बातें हो गई । बस उससे शादी तय !"[57]

---

55. माधवी : भीष्म साहनी, पृ.22
56. दर्पन लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.33
57. वही, पृ.10

सात्त्विक जीवन बिताने केलिए स्वयं तैयार होनेवाले और दूसरों के हित की पूर्ति केलिए सात्त्विक जीवन केलिए थोपे जानेवालों में बहुत अन्तर है । कामवासना मनुष्य की सहजवृत्ति है । उसे काबू में करके संयमित जीवन बिताना सबों से आसान नहीं है । कुछ ऐसे लोग होते हैं जो संयमी होकर सात्त्विक जीवन केलिए तैयार होते हैं । लेकिन दूसरों के द्वारा सात्त्विक जीवन केलिए, तापसी जीवन केलिए मज़बूर होनेवाले कभी असली जिन्दगी जी नहीं सकते हैं । जानकी वल्लभ शास्त्री ने "पाषाणी" में राजकुमारी अहल्या के विचलित यौवन का चित्र खींचा है । अहल्या के बचपन में ही, माता-पिता की वादा पूर्ति केलिए, बूढे गौतम के साथ वह ब्याही जाती है । अहल्या के मां-बाप निस्सन्तान थे । उन्होंने ऋषि गौतम से मन्नौती करके वरदान के रूप में अहल्या पायी थी । लेकिन एक शर्त पर ही मुनि ने वरदान दिया था कि पहली सन्तान उन्हें सौंप देनी थी । इस प्रकार अहल्या की शादी बूढे से हुई ।

आश्रम की शांति और संयमन से अहल्या ऊब गई स्वप्न में उस की मुलाकात इन्द्र से हुई । जागकर अहल्या पति के पास जाती है । मुर्गे की बांग सुनकर स्नान-तपन केलिए निकले पति से उसने अनुरोध किया :

"डर रही मैं किन्तु अपने आप से ।
मत अकेले छोड तुम जाओ कहीं,
करो सन्ध्या, साम या गाओ यहीं ।"[58]

पर-पुरुष इन्द्र के रूप-सौन्दर्य में अटक गया अहल्या का मन स्वप्न-दृश्य भूल नहीं सकता । अपने जीवन को निरर्थक मानकर वह यों दुखती है -

"मैं अमफल ही तो हूं, पर इस जीवन को क्या करूं ?

---

58. पाषाणी जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ.94

ज्ञान न पाया, मिली न माया, मर मर कर फिर क्या करूँ?[59]

गौतम की कमज़ोरियों से अवगत अहल्या अपने पति से कहती है -

"मैं युवति, तुम जर्जरित, इस जलते से सत्य को,
धर्मज्ञान तप बुझा न पाये, जला न पाए तथ्य को।"[60]

पत्नी की विवशता से परिचित मुनि मूर्छित हो गया । उसके मुँह से सहसा निकला - "पाषाणी" "पाषाणी" ।

पति के द्वारा पर पुरुष चाही पत्नी को "पाषाणी" शब्द से पुकारते ही सांसारिक मोह जाल में फंसी अहल्या की नारी चीखती है -

नारी हूँ, यह है बात प्रथम
नारी हूँ, स्वीकृत घात चरम
अन्तर्द्वन्द्व में जले मुझे
जीवन की तृष्णा कहानी हूँ ।
कैसे कहते पाषाणी हूँ ?"[61]

सन्तान-प्राप्ति के मोह में पड़कर अहल्या के माता-पिता ने जो वादा किया था वह अहल्या के जीवन का शाप बन गया । तपोवन तो बिलकुल शान्त है । बूढा पति भी ठंडे राख के समान है । लेकिन अहल्या के शरीर से प्रवहित रक्त गरम-गरम है । उस प्रशान्त तपोवन में उस का मन बिलकुल अशान्त है । निराशा पूर्ण उस का मन अपने वश में नहीं है ।

पर-पुरुष के पीछे जाने केलिए इच्छुक विवाहित नारी का सर्वनाश होना ही चाहिए ऐसा हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं । लेकिन यहाँ एक सत्य अवशेषित है - अहल्या ने पर-पुरुष-प्राप्ति क्यों चाही ?

---

59. पाषाणी - जानकी वल्लभशास्त्री, पृ.100
60. वही, पृ.100
61. वही, पृ.101

कारण, क्या वह बूढा नहीं है ? अपने बुढापे में भी ऋषि की लालसाओं ने अहल्या को "पाषाणी" बनायी है । यहाँ धर्म का प्रतिपुरुष, बूढे गौतम को और संयम सीखना अनिवार्य है । धर्म के नाम पर बूढे पुरोहितों, ऋषियों के हाथ, युवतियों को सौंप देनेवाले माता-पिता के अन्धविश्वास भी सराहनीय नहीं है ।

पुरानी धारणाओं के अनुसार रोग, महामारी, गरीबी, भूकंप आदि देवी-देवताओं के कोप के कारण समझे जाते थे । इस धारणा से कपट-भक्त साधारण लोगों को बहका करते थे । जीविका चलाने के मार्ग के रूप में धर्म का दुरुपयोग भी किया करते थे । वृन्दावनलाल वर्मा ने "खिलौने की खोज" के पुत्तूलाल को इस प्रकार के कपट-भक्त के रूप में चित्रित किया है । बाजे बजने पर व पूजा शुरू होने पर पुत्तूलाल के सिर पर देवता आते हैं । लोगों के प्रश्नों के समाधान के रूप में पुत्तूलाल के देवता बोलते रहते हैं । ताल गाँव के लोगों की अन्ध भक्ति का लाभ उठाते पुत्तूलाल और मित्र उन के नेता भी बन चुके थे । कुओं में दवाई डालने केलिए आये सेनीटरी इंस्पक्टर और सरकार के नौकर को शिवरानन्द, पुत्तूलाल और ग्रामीण अनुयायी मिलकर रोकते हुए कहते हैं - "तुम लोग आ गये धर्म में विघ्न डालने ! कुओं में दवाई नहीं गिर सकेगी इस समय; कुओं में दवाई डालने से खाँसी ज्वर की बीमारी फैलेगी ।"[62]

धर्म की आड में सामान्य जनता पर शासन चलाने की तंत्र-रचना आदि काल से ही राजाओं के द्वारा चलती आ रही है । निरंकुश शासक अपनी सत्ता बनाये रखने केलिए कल्की अवतार रूपी भविष्य सुख की काल्पनिक आशा दिलाकर जनहृदयों में प्रलोभन और आकर्षण जगाते हैं । शासक, जनता को अज्ञानी, अन्धविश्वासी और परंपरा से भयभीत बनाकर प्रश्नहीन करा रहे हैं । कल्की नगर के निरंकुश शासक है अकुलक्षेम । उस नगर में "प्रश्न करना महापाप है ।"

62· खिलौने की खोज वृन्दावनलाल वर्मा, पृ·68

63· कल्की लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·9

लेकिन राजा के पुत्र में बचपन से ही प्रश्न करने की आदत हुई तो पिता ने उसे वहाँ से दूर भेजा । जनता को प्रश्नहीन करने केलिए वहाँ शवसाधना शुरू हुई । जनता ने ऐसा विश्वास किया - "एक सहस्र शव साधना पूरे होते ही नगर में कल्की अवतार होगा । जैसे ही कल्की अवतार नगर में आएगा यह सारा देश धन-धान्य से भर जाएगा, रोग अंधकार सब मिट जाएगा, वह धरती पर सत युग लायेगा ।"[64] हेरूप को कुछ समय केलिए अवधूत एक तांत्रिक की सहायता से अपने मनोनुकूल बनाने में सफल हो गया । हेरूप के अभिषेक केलिए आये हुए तांत्रिक ने तारा के कुमार यौवन का भार गगन तुला पर तौल कर यह घोषित किया कि वह अपवित्र है - "तेरी आँखों में अंजन है, तेरी त्रिवली में समीर है । तू ने ध्वज तोडा है, तू ने सम्बीज फोडा है ।"[65] तांत्रिक ने फिर तारा को गो आसन पर स्थिर करके उसकी पीठ पर बैठकर उसे पवित्र किया ।

तंत्र-साधना, शव-साधना आदि पुराने तंत्र थे । लेकिन वही आज का प्रजातंत्र है । शव-साधना की पूर्णता कब रहेगी ?" जब औंधे पडे हुए शव का मुख, उस की पीठ पर लदे हुए साधक की ओर घूम जाएगा, और जब वह जीवित मनुष्य की भाँति उससे बातें करेगा । क्या यह आज के राजनीतिक परिवेश में पड़े हुए मनुष्य केलिए सच नहीं है ?"[66]

धर्म, पार्टी की बपौती ??

राज-नीति और धर्म दोनों की गलबाहें देश में झगडा उत्पन्न करती है । स्वतंत्र-भारत में ईश्वर और धर्म को किसी पार्टी की बपौती के रूप में स्वीकारी आ गई है । स्वतंत्रता-पूर्व ब्रिटीश-शासन काल में कुछ लोगों ने समझा कि ईश्वर अंग्रेज़ों के साथ है । स्वतंत्रता पाने के बाद उन्हीं लोगों ने यह धारणा फैलाई कि शासक वर्ग

---

64. कल्की - लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.9-10
65. वही, पृ.28
66. वही, पृ.9

के साथ है ईश्वर । ईश्वर के नाम पर इस प्रकार शासकों का शोषण चलता रहा । "बकरी" में देवी के नाम पर वोट पाने का तंत्र दिखाया गया है । ग्रामीण लोगों को बहकाकर कर्मवीर चुनाव जीतने केलिए सिपाही से ऐसा प्रचार कराता है - "अपना फैसला हम ने बता दिया । यदि यह नहीं हुआ तो खैर नहीं, पर हमें देवी प्यारी है । उसका हुक्म, हुक्म है । यदि वह कोई सज़ा कहेगी तो वह भी हमें देनी होगी। जो बदमाशी करेगा उसे परलोक भी भेजा जा सकता है । उस की कृपा से हम आदमी को ठीक करना जानते हैं । पर हम अपनी मर्ज़ी से कुछ नहीं करेंगे । सब देवी के आदेश से होगा । हम सख्ती नहीं करना चाहते । अभी समय । खूब सोच लो ।"[67] राजनैतिक चुनाव में धार्मिक परिवेश देने की प्रथा भारत में कई सालों से चलती है । आज की राजनीति धर्म का आश्रय लेकर ही खेल रही है । इस पर धर्मनिरपेक्षता को पनपने का अवसर मिल रहा है । "अवधेश चन्द्र गुप्त" का कथन इस प्रसंग में सच प्रतीत होता है - "अब धर्म पारलौकिक सुख-साध्य का माध्यम न होकर पृथ्वी पर प्राप्त स्वार्थ सिद्धि केलिए काम में आनेवाला अस्त्र मात्र बन कर रह गया है ।"[68]

आजकल धर्म के अगुए राजनैतिक दल के नेताओं के मित्र और सहचर बन रहे हैं । सन्देह की ज़रूरत नहीं कि राजनीति से लगाव लेकर धर्मप्रचारक और भक्त बन रहे हैं । चुनाव के समय वोट मिलने केलिए राजनैतिक नेता धर्म के अगुओं को कौडी पर मोल लेते हैं । "राम की लडाई" के पात्र सरजू, ममखरा, विमला, रमई आदियों को चुनाव सम्बन्धी बहुत रहस्य कहने को हैं । चुनाव की पिछली रात झोले में रुपए के साथ आनेवाले, भगवन का नाम रटते हुए आनेवाले पंडित, और

---

67. बकरी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ.45
68. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक-विचार तत्व, पृ.165

"राम" के वेष मे नाटक करते हुए आनेवाले इस प्रकार कई लोग चुनाव के समय गाँव-गाँव घूमते हैं । मसखरा से रमई का कथन इस का उदाहरण है - "आइए बनिये राम ! आइए, लीला करने का मतलब ही यही है कि कोई भी राम बन सकता है । राम का अवतार त्रेतायुग में हुआ था, यह तो कथा है, पर सच्चाई यह है कि राम का अवतार आज भी होता है । जो चाहे वह राम हो सकता है ।"[69] वर्तमान चुनावी क्षेत्रों में "रथों" पर अवतार पुरुषों के वेष में नेताओं की यात्राएँ देखने का भाग्य भारतीय ग्रामवासियों को मिल रहा है । नाटक जीवन का अंग बन गया है ।

वर्तमान समाज में धर्म का स्थान अधर्म ने और नीति का स्थान अनीति ने ले लिया है जिस के फलस्वरूप हम अनेक प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं । नाटककारों ने अंधभक्ति का तिरस्कार करते हुए, यथार्थ धर्म को दिखाने का परिश्रम किया भी है । लक्ष्मीनारायण लाल ने "सूखा सरोवर" में सरोवर के शुष्क होने का कारण बताया है -

"मैं धर्म राज हूँ इस नगरी का
तुम सब धीरे-धीरे धर्मच्युत हो गये,
राजा से तर्क करने लगे तुम
राजा को व्यक्ति मानने लगे तुम
ईश्वर पर शंका करने लगे तुम ।
दान-पुण्य, लोकाचार, धर्माचार
सब को छोडते गये तुम
जो कुछ धर्म था, धर्म जनित कर्म था,
सबसे, सब को, सब तरह -
तोडते गये तुम ।

---

69. राम की लडाई लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.51-52

सबको आडम्बर कहा
सब को अन्धज्ञान कहा
ज्ञानी तुम बन गये
तभी धर्म ने सरोवर को सोख लिया ।[70]

धर्म-सम्बन्धी भेदभावों के कारण ही स्वामी विवेकानन्द ने भारत को "पागलखाना" घोषित किया था । यहाँ के धर्म के इतिहास को परखने से ऐसा कहने को हम बाध्य हो जाते हैं कि विवेक शून्य धर्म-प्रवर्तन सदियों से यहाँ कायम रहे हैं । भाई-भाई धर्म के नाम पर झगडने के कारण हमारी हालत पिछडी हुई है । अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए धार्मिक अगुए लोगों को आपस में सिर तुडवाने को आह्वान करते हैं तो एक युवा पीढी इस के विरुद्ध चिन्तित है । "तिन्दुवुलम" का "नचिकेता" ऐसे युवकों का प्रतिनिधि है । आचार्य सत्यदर्शन प्रतिष्ठापन के दिन नृत्य के सम्बन्ध में तर्क करता हुआ अपना दुश्मन तिन्दुवुलम को वहाँ से निकाल देता है तो नचिकेता अधर्म के प्रतिआवाज़ उठानेवाले साहसी युवक के रूप में कहता है - "यदि तुम ने तिन्दुवुलम के साथ अन्याय किया तो स्वयं भगवान भी तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे ।"[71]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों के अध्ययन से यह पता चलता है कि धर्मान्धता के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली नई पीढी जागरूक हुई है । विविध धर्मों के प्रति झगडे के स्थान पर समभावना रखनेवालों में हरिकृष्ण प्रेमी के "साधों की सृष्टि" की बीगम महरू, "आन का मान" की मेहरुन्निसा, "उद्धार" का सुजानसिंह, भीष्मसाहनी के "कबिरा खडा बज़ार में" का कबीर, अश्क के "अलग-अलग रास्ते" का पूरन, शंकर शेष के "बाढ का पानी चन्दन के द्वीप का ठाकुर आदि के स्वर गूंज रहे है ।

---

70. सूखा सरोवर : लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.
71. तिन्दुवुलम लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.58

अस्पृश्यता के पाश में जकडे हुए युवकों में -
शंकर शेष के "एक और द्रोणाचार्य" का एकलव्य, उदयशंकर भट्ट के "गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण" का एकलव्य, माथुर के "कोणार्क" का धर्मपद, "पहला राजा" का "कवष", "प्रेमी जी" के "सांपों की सृष्टि" का काफूर, "सक्सेना" के "अब गरीबी हटाओ" के ग्रामीण हरिजन, "बकरी" के ग्रामीण जन, "लडाई" का "सत्यव्रत", आदि आते हैं, जिन की प्रगति रोकने में समाज के उन्नत धर्मवाले सदा जागरूक थे। धर्म और भक्ति के नाम पर शोषण भी हुआ करता था और अब भी ऐसा देखा जाता है। अन्धविश्वास के नाम पर महिलाओं को कई कष्ट झेलने पडे भी थे। "भीष्म साहनी" के "माधवी" की माधवी, लक्ष्मीकान्त वर्मा के "तिन्दुवुलम" की पद्मावती "लक्ष्मीनारायणलाल" के "दर्पन" की पूर्वी, "कलंकी" की तारा, जानकी वल्लभशास्त्री के "पाषाणी" की अहल्या आदि एक न एक प्रकार से पीडित नारियाँ हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं वर्तमान पीढी धर्म से विमुख हैं तो उस के कारण धर्म के अगुए ही है जिन्होंने अपने कार्यकलापों से लोगों को ईश्वर से मिलाने के स्थान पर तुडवाने का ही कार्य किया है। लेकिन आशा की बात यह है कि युवा पीढी धर्मभेद, जाति-वैर आदि भूल कर एकरसता के साथ रहने के पक्षधर हैं।